Gyanvividha, Vol.-1; Issue-5 (October-December) 2024 : PP-14-19

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

Online ISSN : 3048-4537
Vol.-1; Issue-5 (Oct.-Dec.) 2024
Page No.- 14-19
©2024 Gyanvividha
www.journal.gyanvividha.com

भोला दास

शोधार्थी
विश्वविद्यालय इतिहास विभाग,
ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय,
दरभंगा.

Corresponding Author :

भोला दास

शोधार्थी
विश्वविद्यालय इतिहास विभाग,
ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय,
दरभंगा.

डॉ. लोहिया का भाषा- संबंधी चिंतन

डॉ. लोहिया भारत के मौलिक समाजवादी चिंतक थे। उन्होंने अपने समाजवाद में भाषागत विषयों पर भी गंभीरतापूर्वक विचार किया है। डाॅ. लोहिया अंग्रेजी भाषा की समाप्ति के समर्थक थे।उन्होंने सामान्य और विशेष व्यक्तियों के बालकों को अंग्रेजी पढ़ाये जाने का निषेध किया था। वे चाहते थे कि सभी प्राथमिक विद्यालयों से अंग्रेजी अनिवार्यतः हटा दी जाय और यह प्राथमिक शिक्षा पूर्णतः नगरपालिकाओं और जिला बोर्डों के अधीन कर दी जाय, जिससे विदेशी ढंग के अपव्ययी विद्यालय बन्द हों। इस विचार के पीछे डॉ. लोहिया का तर्क था कि यदि अंग्रेजी बड़े लोगों के बालकों के विद्यालयों में चलती रहती है तो साधारण व्यक्तियों के बच्चे बड़े लोगों के बच्चों के समक्ष प्रतियोगिता में नहीं ठहर पाते और "जनता के दिमाग पर हथौड़े की तरह असर पड़ता है कि बड़े लोग तो अपने बच्चों को अंग्रेजी पढ़ा लेते हैं और हमारे बच्चे नहीं पढ़ पाते हैं।"[1] डॉ. लोहिया ने शासन की 'अंग्रेजी हटाओ' नीति की कटु आलोचना की। उन्होंने कहा कि शासन एक ओर तो हिन्दी के सार्वजनिक प्रयोग का प्रचार करता है और दूसरी ओर सिक्के, बहीखाते, तार आदि कार्य अंग्रेजी में करता है। इस हिन्दी- प्रचार- नीति के द्वारा अन्य देशी भाषाओं में हिन्दी के प्रति कटुता का भाव उत्पन्न होता है और अंग्रेजी-प्रयोग के कारण हिन्दी तथा अन्य देशी भाषाओं का विकास अवरुद्ध होता है।"[2]

उपर्युक्त कारणों से डॉ. लोहिया ने विद्यार्थियों और विशेष रूप से असफल विद्यार्थियों, उनके पालकों और भारतीय जनता को सभाओं, जुलूसों

तथा सविनय अवज्ञा द्वारा अंग्रेजी का बहिष्कार करने के लिए आवाहन किया।[3] इस हेतु उन्होंने स्वयं-सेवकों की समितियों के गठन पर बल दिया। उनके मत में, इन समितियों का कार्य स्थान-स्थान पर अंग्रेजी के नामपटों को मिटाकर लोक-भाषा के प्रचलन का एक मानसिक वातावरण निर्मित करना है। उनका कहना था कि अंग्रेजी की लिखावट का जवाब उसको मिटावट से देना चाहिए। अंग्रेजी हटाने और देशी भाषाओं की प्रतिष्ठा के लिए अंग्रेजी दैनिक पत्रों का पढ़ना बन्द होना चाहिए क्योंकि ये अंग्रेजी पत्र, हिन्दी पत्रों को ग्रसित किये हुए हैं। इस ध्वंसात्मक पहलू के अतिरिक्त अपनी भाषाओं के उत्थान के लिए रचनात्मक कार्य कर भाषा के संकुचित क्षेत्र को व्यापक बनाना चाहिए, क्योंकि अपनी भाषाओं की कमजोरियाँ भी अंग्रेजी हटाने के मार्ग में बाधक हैं।

भारतीय भाषाओं की संकुचित मनोवृत्ति पर भी डॉ. लोहिया को गहरा दुःख था। उनका मत था कि हिन्दी, तेलुगु, मराठी, बँगला आदि सभी भारतीय भाषाओं के अतिवाद ने अंग्रेजी को बढ़ावा दिया है। किसी व्यक्ति की वाणी और व्यक्तित्व की प्रशंसा के लिए अमृतवाणी और अवतारी पुरुष-जैसे विशेषण भारतीय भाषाओं में शीघ्र लगा दिये जाते हैं। इन भाषाओं में हर वाणी अमृत वाणी है, हर सन्देश अमर सन्देश है, हर पुरुष महापुरुष है। किसी यथार्थ स्थिति को अतिशयोक्ति में व्यक्त करने की पण्डिताऊ और परम्परागत चारण शैली अब भी भारतीय भाषाओं में प्रचलित है। परिणामतः वास्तविकता के स्थान पर हास्य का प्रादुर्भाव होता है। इस प्रकार की शैली निन्दा के लिए भी इन भाषाओं में प्रयुक्त होती है। ऐसी शैली से तर्क, विश्लेषण और सत्य दूर भागते हैं। भाषाओं में इस कारण अब सन्तुलन नहीं रह गया है। डॉ. लोहिया के मत में सभी भारतीय भाषाओं को झूठी पाखण्डता ने घेर रखा है।

उपर्युक्त बुराइयों के कारण एक ओर तो भारतीय भाषाओं का विकास अवरुद्ध है और दूसरी ओर इनके सार्वजनिक जीवन के प्रयोग से लोगों को जनेऊ, चोटीधारी, पिछड़ी और पुरानी आडम्बरयुक्त संस्कृति के आगमन का भय रहता है। परिणाम यह होता है कि लोग अंग्रेजी से ही चिपके रहना चाहते हैं। उक्त सन्दर्भ में डॉ. लोहिया ने स्पष्ट कहा था कि "... मैं अपनी, तेलुगु व हिन्दी और उर्दू में यह जो झूठी शुचिता, झूठा चरित्र, झूठी सफाई, झूठी सच्चाई है, इन सब चीजों को जगह नहीं देता। हिन्दी का आकार-प्रकार, पेट और मन, तेलुगु का पेट और मन इतना लम्बा-चौड़ा, बड़ा, विशाल, व्यापक होना चाहिए कि उसके अन्दर पतिव्रता और पत्नीव्रता और दिलफेंकी और ऐयाशी और इश्कबाजी सबको जगह रहनी चाहिए। भाषा एक माध्यम है। भाषा कोई ऐसा माध्यम नहीं है कि किसी एक ही चीज का उसको माध्यम बनाकर उसे सिकोड़ डाले। उसके अन्दर से जो सच और झूठ है, सच्चे दिल से और झूठे दिल से जो चीज है, वह अपनी भाषा के माध्यम से अलग निकल पड़े।"[4]

डॉ. लोहिया ने अंग्रेजी के निष्कासन हेतु उपर्युक्त दोषों को निकाल फेंकने का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने अंग्रेजी रानी के बहिर्गमन पर उसके प्रतिस्थानापन्न के विषय में भाषा-नीति के विभिन्न

विकल्पों पर भी प्रकाश डाला, जिनमें से एक विकल्प बहुभाषी केन्द्र था। इस विकल्प के अन्तर्गत केन्द्र के सार्वजनिक कार्यों में सभी देशी भाषाओं का प्रयोग होगा। द्वितीय विकल्प के अनुसार अहिन्दीभाषियों की सुरक्षा के साथ केन्द्र में हिन्दी भाषा का प्रयोग होगा। अहिन्दी भाषियों को हिन्दी सीखने के लिए दस वर्ष तक नौकरी की सुरक्षा रहेगी और हिन्दी भाषियों को दस वर्ष तक सेना के अतिरिक्त किसी भी प्रकार की नौकरी न मिलेगी। किन्तु अहिन्दी भाषियों को हिन्दी का अध्ययन अच्छी तरह करना होगा और हिन्दी में ही परीक्षा देनी होगी। इस सम्बन्ध में डॉ. लोहिया की धारणा थी कि "हिन्दी इलाके वालों की छाती चौड़ी होनी चाहिए। उन्हें देश की एकता तथा हिन्दी को देश की भाषा बनाने के लिए कुछ देना भी सीखना चाहिए।"[5] तृतीय विकल्प में दो भाषी केन्द्र होगा, जिसमें मध्यदेश के लिए हिन्दी और तट देश के लिए अंग्रेजी की व्याख्या होगी।[6] चतुर्थ विकल्प में हिन्दी का केन्द्र में कोई स्थान न होगा बशर्ते कि अहिन्दीभाषी क्षेत्र तेलुगु, बँगला आदि भाषाओं में से एक को केन्द्र की भाषा बनाने पर सहमत हों।[7] एक अन्य विकल्प के अनुसार केन्द्र की भाषा हिन्दी हो, किन्तु जनसंख्या के अनुपात से प्रत्येक राज्य को हमेशा के लिए नौकरियों की संख्या बाँध दी जाये। इस व्यवस्था को डॉ. लोहिया उसी समय चाहते थे जबकि अहिन्दीभाषी दस वर्ष की नौकरी-सुरक्षा-शर्त अस्वीकार करें। यद्यपि डॉ. लोहिया जानते थे कि इस नीति के द्वारा जाति, क्षेत्रीयता आदि के विनाशकारी तत्त्व फैल सकते हैं, तथापि भाषा-संघर्ष की स्थिति में अंग्रेजी बहिर्गमन के लिए उन्हें यह नीति स्वीकार थी।[8]

यद्यपि उपर्युक्त सभी विकल्प अंग्रेजी हटाने के लिए डॉ. लोहिया को स्वीकार थे, तथापि उनकी भाषा-सम्बन्धी उचित और सही नीति यह थी कि केन्द्रीय सरकार की भाषा हिन्दी हो। हिन्दी की प्रतिष्ठा के बाद ठीक दस वर्ष तक केन्द्रीय शासन की 'गजटेड सेवाएँ' अहिन्दीभाषियों के लिए सुरक्षित हों। केन्द्र का राज्यों के साथ व्यवहार हिन्दी में हो और अहिन्दीभाषी हिन्दी न जान लेने तक केन्द्र के साथ अपनी भाषा में व्यवहार करें। स्नातक कक्षाओं तक का अध्ययन अपनी-अपनी प्रादेशिक भाषाओं में हो और स्नातकोत्तर अध्ययन हिन्दी में हों। मण्डल (जिलों) तक के न्यायालय अपनी-अपनी मातृभाषा में न्यायिक कार्यवाही करने के लिए स्वतन्त्र हों, किन्तु उच्च तथा सर्वोच्च न्यायालयों में न्यायिक कार्यवाही हिन्दी भाषा में हो। यद्यपि लोक-सभा में हिन्दी भाषा में ही भाषण दिये जायें, किन्तु हिन्दी से अपरिचित सदस्य अपनी मातृभाषा में भाषण देने के लिए स्वतन्त्र हों।

डॉ. लोहिया का मत था कि यदि उपर्युक्त सही भाषा-नीति को कोई राज्य स्वीकार नहीं करता तो उसे अपनी मातृभाषा में कार्य करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। डॉ. लोहिया का विश्वास था कि अपनी-अपनी मातृभाषाओं में कार्य करने की अस्थायी हठधर्मी, अन्ततोगत्वा हिन्दी के प्रति प्रेम में परिवर्तित होगी। इसलिए उनकी सलाह थी कि राष्ट्रीय हित की दृष्टि से भाषा-आन्दोलन का उद्देश्य 'अंग्रेजी हटाना' होना चाहिए, न कि हिन्दी प्रतिष्ठित करना।[9] उनका पूर्ण विश्वास था कि उपर्युक्त नीति के द्वारा अन्त में हिन्दी ही भारत की सार्वजनिक प्रयोग की भाषा होगी, किन्तु राष्ट्रभाषा हिन्दी का क्या स्वरूप हो, इस पर ही उन्होंने प्रकाश डाला।

हिन्दी भाषा के मूल को स्पष्ट करते हुए डॉ. लोहिया ने कहा कि डेढ़ दो हजार वर्ष पूर्व, दूर दक्षिण की 'इक्ष्वाकु' अथवा 'शक' राजधानियों में सर्व भारतीय भाषा का प्रयोग होता था। यही स्थिति बंगाल और महाराष्ट्र में भी थी। जिस प्रकार प्रत्येक युग में संस्कृत और पालि की तरह कोई-न-कोई सर्वमान्य अपभ्रंश रहा, उसी प्रकार हिन्दी भी उपर्युक्त भारतीय परम्परा की भाषा है। अतः व्यापक दृष्टिकोण से हिन्दी को सर्वमान्य अपभ्रंश अथवा प्राकृत मानना चाहिए। डॉ. लोहिया के शब्दों में, "यही उसका उद्गम है। यही उसका चरित्र है। यही उसकी तकदीर के कुछ पहलू और करवटें हैं।"[10] यह भाषा छावनियों में चली। दक्किनी के रूप में दक्षिण की छावनियों में चली। आज हिन्दी के रूप के प्रश्न पर मतैक्य नहीं है। कोई चाहता है संस्कृतनिष्ठ तो कोई अरबीनिष्ठ, कोई चालू तो कोई गड़बड़झालावाली तट देशी प्रयोग से लदी। हिन्दी की प्रतिभा यही है कि उसे इतने रूप हैं। कोई-न-कोई रूप अपने-आप सर्वमान्य होता रहता है। डॉ. लोहिया का मत था कि यदि फिर से यह देश एक हुआ तो इसकी भाषा वही होगी, जो डॉ. लोहिया बोला करते थे। अपभ्रंश से निकली हुई चालू भाषा ही डॉ. लोहिया की भाषा थी। हिन्दी की परिभाषा देते हुए उन्होंने कहा था, "कि यह पालि और संस्कृत की औलाद है लेकिन वह अपभ्रंशवाली, जो जनता में टूट-टाट गयी। अपभ्रंश में तो फारसी के भी शब्द आ जाते हैं, अरबी के भी आ जाते हैं।... जो चालू भाषा है, ताकतवर भाषा है, उसमें लोग अपने ईमान और जान का एक ठोस भाषा में इस्तेमाल करते हैं। उसी से देश को बनाना है।"[11]

डॉ. लोहिया के मतानुसार हिन्दी सटीक, रंगीन, पारिभाषिक, ठेठ, सशक्त और रोचक होनी चाहिए। किसी भाषा में कितनी पुस्तकें हैं, यह एक गौण प्रश्न है। उनका मत था कि अंग्रेजी हटाने के सन्दर्भ में हिन्दी-पुस्तकों के अभाव की चर्चा करना मूर्खतापूर्ण और बदमाशी है। इस अभाव को महाविद्यालयों के प्राध्यापकों को ग्रीष्मकालीन अवकाश में एक-एक पुस्तक का हिन्दी अनुवाद अनिवार्य बनाकर पूरा किया जा सकता है। इन अनुवादित पुस्तकों में सटीकता और रंगीनी तथा सुनिश्चित अर्प का अभाव रह सकता है, किन्तु अभावों की पूर्ति पारिभाषिक शब्दों और शब्द-कोश के बढ़ने से नहीं हो सकती। डॉ. लोहिया की दृष्टि में इन्हें "दूर करने का एकमात्र उपाय है कि भाषारूपी रथ को सब सामान ढोने के लिए फौरन इस्तेमाल करना शुरु किया जाये और सब तरह की बुद्धियाँ सब क्षेत्रों में खिलें।"[12]

भाषा को सँवारने-सुधारने का काम जितना भाषाशास्त्री या शब्दकोश निर्माता करते हैं, उससे ज्यादा वकील, राजपुरुष, अध्यापक, लेखक, वक्ता, वैज्ञानिक इत्यादि भाषा प्रयोग द्वारा किया करते हैं। इनके प्रयोग से भाषा सुधरती है, न कि सुधर जाने के बाद ये लोग इसको प्रयोग करने बैठते हैं। डॉ. लोहिया के शब्दों में, 'डुबडुबाने और छपछपाने पर ही तैरना आता है। प्रयोग के बाद ही भाषा समृद्ध होती है। विधायकों, न्यायालयों, विज्ञान मशीनशालाओं, धन्धों, रण-केन्द्रों इत्यादि में जब हिन्दी डुबडुबायेगी, छपछपायेगी तभी समृद्ध बनेगी, उसके पहले हरगिज नहीं।'[13] हिन्दी या हिन्दुस्तान की किसी भी भाषा का

प्रश्न वस्तुनिष्ठ है ही नहीं। साहित्य, विश्लेषण और वस्तुनिष्ठ तर्क से इस प्रश्न का कोई सम्बन्ध नहीं। यह केवल विशुद्ध राजनीतिक संकल्प और इच्छा का प्रश्न है। यदि अंग्रेजी हटाने और हिन्दी अथवा अन्य हिन्दुस्तानी भाषाएँ लाने की इच्छा बलवती हो जाये, तो मूक-वाचाल हो जाये, सब बोलने लगें और सब-कुछ बोला जा सके।

डॉ. लोहिया का विचार था कि हिन्दी को पवित्र बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति ही हिन्दी की प्रगति में बाधक है। ये व्यक्ति हिन्दी का पल्ला जनेऊ और चोटीधारियों के साथ जोड़ देते हैं। वे अंग्रेजी के घोर विरोधी थे, किन्तु उतने ही जनेऊ, चोटी के भी। वे चाहते थे कि यदि नवीन विश्व के नेतृत्व हिन्दी को समर्थ बनाता है तो उसे सभी भाषाओं से सीखने, अपने को बदलने और सब ओर से अपने को धनी बनाने के लिए तैयार रखना चाहिए। हिन्दी की प्रतिष्ठा के लिए हिन्दीभाषियों को अंग्रेजी छोड़ने के साथ-साथ पुरानी दुनिया को भी छोड़ना चाहिए। उनका मत था कि भाषा मिला भी सकती है और अलग भी कर सकती है। इतिहास के अलग- अलग कालों में भाषा ने अलग-अलग कार्य किये हैं। वर्तमान में भाषा को मिलन का कार्य करना चाहिए। हिन्दी को चाहिए कि वह तेलुगु, तमिल, मराठी, बँगला आदि देशी भाषाओं को अपने में समाहित कर अपना क्षेत्र व्यापक बनाये। इस सामञ्जस्यवादी सिद्धान्त का विश्लेषण करते हुए उन्होंने कहा, "मैं एक सिद्धान्त और जोड़ देना चाहूँगा कि हिन्दी, तमिल और अन्य हिन्दुस्तानी भाषाएँ मिश्रण करें। जनसाधारण समय बीतने पर विदेशी शब्दों को अपनी भाषा के योग्य बना लेंगे अथवा उन्हें छोड़ देंगे। हिन्दी को तेलुगु, तमिल, मराठी, बँगला और अन्य भाषाओं से मिश्रण करना चाहिए।"[14]

डॉ. लोहिया का मत था कि विचार-अभिव्यक्ति हेतु यदि देशी भाषाओं से कोई शब्द न मिले तो उस अवसर पर सफाई की झंझट में पड़कर घण्टों कोई अपना शब्द ढूँढ़ते रहना उचित नहीं। जिस भाषा को वक्ता स्वयं जानता हो और उसको सुननेवाला थोड़ा-बहुत समझ सकता हो उस भाषा के शब्दों का प्रयोग यदा-कदा बेहिचक करना चाहिए। 'हाइड्रोजन' शब्द के लिए यद्यपि हिन्दी में 'उद्जन बम' शब्द है तथापि 'हाइड्रोजन' शब्द का प्रयोग किया जा सकता है, यदि सामान्य व्यक्ति उसे समझता है। इसी प्रकार 'आक्सीजन' शब्द का भी प्रयोग किया जा सकता है। इन विदेशी शब्दों के प्रयोग अपनी भाषा में करते रहने से शनैः शनैः ये शब्द अपनी भाषा के बन सकते हैं। डॉ. लोहिया का मत था कि विदेशी भाषाओं के शब्दों को तोड़ना-मरोड़ना, घिसना-पीटना देहाती और बेपढ़े लोगों को अधिक आता है अपेक्षाकृत पढ़े लोगों के। हिन्दुस्तान की भाषाओं की ध्वनि और उनके शब्दों के स्वरुप के अनुसार देहाती और बेपढ़े लोग विदेशी भाषा के शब्दों को तोड़-मरोड़ देते हैं। डॉ. लोहिया देहातियों द्वारा प्रयुक्त 'लाट-फारम', 'सिंगल', 'लालटेन', 'गजिस्टर', 'टिक्कस' और 'टीशन' आदि शब्दों को शुद्ध हिन्दी शब्द समझते थे, जो कि क्रमशः 'प्लेटफार्म', 'सिगनल', 'लैनटर्न', 'मजिस्ट्रेट', 'टिकिट' और 'स्टेशन' शब्दों से बनाये गये हैं। वे सर्वत्र रुचिपूर्वक देहातियों द्वारा बनाये गये उपर्युक्त शब्दों का ही प्रयोग करते थे। वे कहा करते थे कि दूसरी भाषाओं के शब्दों को आत्मसात् करने की शक्ति देकर बेपढ़े लोग नयी भाषा के स्त्रष्टा होते हैं और पढ़े लोग माँजनेवाले। काश! सभी वर्ग मिलकर हिन्दी का

विकास करें।

संदर्भ-सूची :

1. डॉ. लोहिया: समलक्ष्य, समबोध, समता विद्यालय न्यास, प्रकाशन, हैदराबाद, 1969, पृ. 20
2. डॉ. लोहिया : धर्म पर एक दृष्टि, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1966, पृ. 17
3. डॉ. लोहिया : खोज, वर्णमाला, विषमता, एकता, समाजवादी प्रकाशन, हैदराबाद, 1960, पृ. 17
4. डॉ. लोहिया : समलक्ष्य, समबोध, समता विद्यालय न्यास प्रकाशन, 1969, पृ. 23
5. डॉ. लोहिया : भाषा, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1965, पृ. 21
6. डॉ. लोहिया : समलक्ष्य, समबोध, समता विद्यालय न्यास प्रकाशन, हैदराबाद, पृ. 18
7. डॉ. लोहिया : हिन्दू और मुसलमान, समता विद्यालय न्यास, प्रकाशन, हैदराबाद,1969, पृ. 7
8. डॉ. लोहिया : निजी और सार्वजनिक क्षेत्र, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1966, पृ. 26-27
9. डॉ. लोहिया : भाषा, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद,1965, पृ. 23
10. डॉ. लोहिया : भाषा, नवहिन्द प्रकाशन,हैदराबाद,1965,. 8 (भूमिका)
11. डॉ. लोहिया : हिन्दू और मुसलमान, समता विद्यालय न्यास प्रकाशन, 1969, पृ. 7
12. डॉ. लोहिया : भाषा,नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद,1965ई, पृ. 7 (भूमिका)
13. डॉ. लोहिया : भाषा,नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1965, पृ. 10, (भूमिका)
14. डॉ. लोहिया : समाजवादी पोथी 2, 133 लेखकों के कुछ उत्तर, पृ. 45

•